जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- ३०

धर्मतंत्र द्वारा लोकशिक्षण

(प्रवचन)

युग निर्माण योजना, मथुरा

धर्मतंत्र द्वारा लोकशिक्षण

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

युग निर्माण योजना का प्रारंभ इस उद्देश्य से हुआ कि मनुष्य की भावनात्मक स्थिति में परिवर्तन किया जाए और उसे ऊँचा उठाया जाए। संसार में जितनी भी समस्याएँ हैं उन सारी समस्याओं का एकमात्र कारण यह है कि मनुष्यों का भावनात्मक स्तर गिरता हुआ चला गया। यदि मनुष्यों का भावनात्मक स्तर ऊँचा हो तो जो समस्याएँ आज हमको दिखाई पड़ती हैं उनमें से एक का भी अस्तित्व न रहे। जितनी भी कठिनाइयाँ मनुष्य के सामने हैं, वे उसकी स्वयं की पैदा की हुई हैं, वास्तविक नहीं। सृष्टि में जितने भी जीव रहते हैं सारे के सारे अपने जीवन की सुविधाओं को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। कीड़े-मकोड़ों से लेकर के जलचर, नभचर और

थलचर के सामने कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसके कारण से वह दुखी रहते हों। मनुष्यों के संपर्क में जो आ गए हैं उन प्राणियों के दुखी होने के कारण हैं। उनको मनुष्यों ने पाल रखा है, वे दुखी भी हो सकते हैं, काटे भी जा सकते हैं, भूखे भी रखे जा सकते हैं, घायल भी हो सकते हैं लेकिन जो प्रकृति की गोद में रहते हैं उनके सामने कोई समस्या नहीं है। जीवन-यापन करने के संबंध में फिर मनुष्य के सामने इतनी समस्याएँ क्यों ? मनुष्य तो बुद्धिमान प्राणी है, सुशील प्राणी है, उन्नत प्राणी है उनके सामने तो सुख-सुविधाओं के अंबार होने चाहिए।

लेकिन हम देखते हैं कि दूसरे प्राणियों की तुलना में मनुष्य बहुत दुखी है। उसका एकमात्र कारण यह है कि उसकी विचारणाएँ, उसकी भावनाएँ उसके दृष्टिकोण निम्न स्तर के होते चले गए। अगर यह स्तर उनका ऊँचा उठा रहा होता तो अभावग्रस्त स्थितियों में भी मनुष्य ने शांति का जीवन जिया होता। कहा जाता रहा है कि संपदाएँ मनुष्य के पास

होंगी, सुख-सुविधाएँ मनुष्य के पास होंगी तो वह समुन्नत होगा, सुखी रहेगा और आनंद से रहेगा, लेकिन यह बात सही नहीं है। गरीब लोगों के पास जिनके पास साधन और सामान नहीं होते, संपत्ति नहीं होती, वह भी बड़ा सुख और आनंद का जीवन जीते हैं और उनकी वृद्धि का कोई मार्ग रुका नहीं रहता। ऋषियों का जीवन इसी प्रकार का था। उनके सामने उनसे ज्यादा अभावी दुनिया में कोई भी नहीं है। पहनने के नाम पर एक लँगोटी, इस्तेमाल करने के नाम पर एक कमंडलु, फूस की झोंपड़ी, जमीन पर सोना, फूस की बिछावन, घास-पात और कंद-मूल खा करके गुजारा कर लेना। इतना सब होते हुए भी ऋषियों ने बताया कि अभावग्रस्तता में भी सुखी जीवन बन सकता है, सुख और शांति का स्रोत बन सकता है, विद्या अध्ययन में कोई रुकावट पैदा नहीं हुई। मगर सही बात यह है कि जिन-जिन लोगों के पास विशेष सुविधाएँ थीं, उन लोगों की अपेक्षा उन लोगों ने ज्यादा सुखी और समुन्नत जीवन जिया। ये

बात उन्होंने साबित करने के लिए की थी कि वक्त-बेवक्त वे न हों, साधन मनुष्य के पास न हों तो भी वह आदमी सुखी जीवन जी सकता है, समुन्नत जीवन जी सकता है और दूसरों के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। फर्क केवल एक है कि भावनात्मक स्तर ऊँचा उठा हुआ हो।

इसकी तुलना में दूसरी बात है जिनके पास अपार संपदाएँ थीं और रावण जैसों के पास संपदाओं की क्या कमी थी। उसकी सोने की लंका बनी हुई थी, लेकिन वह स्वयं भी दुःख में रहा, स्वयं भी क्लेशचक्र में पड़ा रहा, उसके संपर्क में जो लोग आए जहाँ कहीं भी वह गया, वहाँ उसने दुःख फैलाया और संकट फैलाया। संपत्ति से क्या लाभ रहा? विद्या से मैं चैन से रहा हूँ लेकिन उसके पास विद्या होने से भी क्या लाभ हुआ? उसके पास धन था, विद्या थी, बल था, सब कुछ तो था, लेकिन एक ही बात की कमी थी भावनात्मक स्तर ऊँचा न होना। बस, एक ही समस्या का आधार है जिसे यों हम

समझ लें तो फिर हम उपाय भी खोज लेंगे और विजय भी मिलेगी। उपाय हम अनेक ढूँढ़ते रहते हैं पर मैं समझता हूँ कि इतने पर समाधान नहीं हो पाते। खून अगर खराब हो तो खराब खून के रहते हुए फिर कोई दवादारू कुछ काम नहीं करेगी। फुंसियाँ निकलती रहती हैं। एक फुंसी पर पट्टी बाँधी, दूसरी फुंसी फिर निकल पड़ेगी। एक घाव अच्छा हुआ, दूसरा घाव फिर पैदा हो जाएगा। बराबर कोई न कोई शिकायत पैदा होती रहेगी। खून खराब न हो जब खून साफ हो जाए, तब न कोई फुंसी उठने वाली है न कोई और चीज उठने वाली है। ठीक इसी प्रकार से अगर हमारा भावनात्मक स्तर ऊँचा हो तो न कोई समस्या पैदा होने वाली है और न कोई गुत्थी पड़ने वाली है। इसके विपरीत हमारी मन:स्थिति और हमारा दृष्टिकोण गिरा हुआ हो तो हम जहाँ कहीं भी रहेंगे अपने लिए समस्या पैदा करेंगे और दूसरों के लिए भी समस्या पैदा करेंगे। यही वस्तु-स्थिति है और यही आज की परिस्थितियों का दिग्दर्शन है।

भूतकाल में भारतवर्ष का इतिहास उच्चकोटि का रहा है, समुन्नत रहा, सुखी रहा है। इस पृथ्वी पर देवता निवास करते थे, स्वर्ग की परिस्थितियाँ थीं, इसका और कोई कारण नहीं था, न आज के जैसे साधन उस जमाने में थे। आज जितनी नहरें हैं उतनी उस जमाने में थीं कहीं। आज बिजली की जितनी साधन-शक्ति प्राप्त है उस जमाने में कहाँ थीं। आज जितने अच्छे पक्के मकानात और दूसरे यातायात के साधन हैं उस जमाने में कहाँ थे, लेकिन इस पर भी यह देश संपदा का स्वामी था। इस देश के नागरिक देवताओं के शिविर में चले जाते थे। यह भूमि तब **'स्वर्गादपि गरीयसी'** मानी जाती थी। यद्यपि आज की तुलना में अभावग्रस्त थी उस जमाने में, इसका क्या कारण था? इसका कारण एक ही था कि उस जमाने के लोग उच्चकोटि का दृष्टिकोण अपनाए हुए थे। उनकी भावनाएँ उच्च स्तर की थीं। उसका परिणाम यह था कि लोग परस्पर स्नेहपूर्वक रहते थे, सहयोगपूर्वक रहते थे, परस्पर विश्वास करते थे,

एकदूसरे के प्रति वफादार होते थे, संयमी होते थे, सदाचारी होते थे, मिल-जुल के रहना जानते थे। एकदूसरे के सहयोग करने की वृत्तियाँ हर एक के मन में बसी हुई थी। अपने आप स्वयं कष्ट उठा लेना और दूसरे की सेवा करना हर आदमी के सामने लक्ष्य था। यही कारण था कि आदमी थोड़ी सी वस्तुओं में साधारण वस्तुओं में भी सुखी रहते थे और दुनिया में जगद्गुरु कहलाते थे, चक्रवर्ती शासक कहलाते थे। बाहर के लोग यहाँ आकर बुलाते थे कि आप चलिए हमारी शासन व्यवस्था को सँभालिए। यहाँ सुख-संपदाओं के थोड़े से किफायतशारी मितव्ययता के आधार पर जो कुछ भी संपदा थी, उसी के इस्तेमाल करने और कुछ बचत करने का था। यहाँ हर घर में सोना-चाँदी था, हर घर में लक्ष्मी का निवास था, क्योंकि आदमियों ने मितव्ययता से उपयोग किया हुआ था। अपव्ययता का दौर जो आजकल चारों ओर फैला हुआ है उस जमाने में नहीं था। उस जमाने की परिस्थितियाँ और आज की

परिस्थितियों में हम जब तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं कि जो संपन्नता आज हमारे पास ज्यादा है, शिक्षा हमारे पास ज्यादा है, विज्ञान के साधन हमारे पास ज्यादा हैं। चिकित्सा के माध्यम हमारे पास ज्यादा हैं, असंख्य माध्यम और साधन ज्यादा हैं फिर भी हम असंतुष्ट होकर कहीं अधिक दुखी, कहीं अधिक दीन, कहीं अधिक उलझे हुए, कहीं अधिक व्याधियों में व्यस्त हैं। इसका कारण भावनात्मक स्तर का निकृष्ट हो जाना ही है।

युग निर्माण योजना का आविर्भाव केवल इसी समस्या का समाधान करने के लिए हुआ था। दूसरे शब्दों में इसको हम यों कह सकते हैं कि विश्व की जितनी भी समस्याएँ, कठिनाइयाँ और गुत्थियाँ हैं उन सबका समाधान एक ही उपाय से करने के लिए, एक ही उपाय से दूर करने के लिए जो हल ढूँढ़ा गया था, वह नवनिर्माण आंदोलन था। नवनिर्माण आंदोलन का अर्थ भावनात्मक नवनिर्माण है। मनुष्य की विचारणाएँ, भावनाएँ और दृष्टिकोण को बदल

देना यही हमारा उद्देश्य है, उसे बदल देने के पश्चात सारी परिस्थितियाँ स्वयं ही बदल जाती हैं। एक-एक चीज को हम बदलना चाहें तो बहुत मुश्किल है। हजारों समस्याएँ सामने हैं, उनको अलग-अलग तरीके से हल करना असंभव है, क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्यों की आमदनी बढ़ती चली जाएगी, उसमें हर आदमी का खरच बढ़ता चला जाएगा। आदमी का खरच बढ़ता चला जाए और आमदनी की अपेक्षा खरच ज्यादा किया तो दरद कैसे दूर हो जाएगा? अपव्यय अगर मनुष्य के काबू से बाहर है तो चाहे कितनी ही आमदनी क्यों न बढ़े हमेशा कर्जदारी की समस्या बनी रहेगी। इसी प्रकार से अगर कोई आदमी क्रोधी है कोई आदमी स्वार्थी है, कोई आदमी दुष्ट प्रकृति का है तो वह भी अपने समीपवर्ती लोगों के साथ जो व्यवहार करेगा उसकी प्रतिक्रिया होगी ही और दूसरे लोग भी उसके प्रति डाह रखेंगे, ईर्ष्या रखेंगे, दुर्व्यवहार रखेंगे, कुढ़ेंगे, जलन पैदा करेंगे, लड़ाई-झगड़े होंगे और सब समस्याएँ उत्पन्न हो

जाएँगी। गुस्सा वही है, गुस्सों का केंद्र एक ही है, इसलिए उसको हल करने के लिए भावनात्मक निर्माण करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। चाहे वह उपाय आज इस्तेमाल किया जाए या एक हजार वर्ष बाद। स्वस्थ स्थिति तब हो सकती है, जब सबका ध्यान उस ओर जाएगा कि जहाँ गुत्थियों का केंद्र है। उस केंद्र को सुधारने और सँभालने के लिए कदम उठाए जाएँ। युग निर्माण योजना ने यह कदम उठाया और उसकी ओर पाँव बढ़ाया। इसलिए हमारा प्रयास भावनात्मक निर्माण है। इसी का दूसरा नाम विचारक्रांति है, इसी का दूसरा नाम ज्ञानयज्ञ है। ज्ञानयज्ञ अर्थात विचारक्रांति के नाम पर युग निर्माण योजना ने बहुत दिन पूर्व कुछ क्रिया-कलाप प्रारंभ किए थे और उन क्रिया-कलापों के लिए एक मंच, एक साधन, एक माध्यम बनाया गया था और वह धर्म मंच का माध्यम बोला गया था, क्योंकि भारतवर्ष की प्रतिक्रिया विशेष रूप से इसी लायक थी। भारतवर्ष में अस्सी फीसदी लोग बिना पढ़े-लिखे रहते हैं

और ये अस्सी फीसदी लोग देहातों में रहते हैं। इनके मानसिक स्तर ऐसे हैं जिसमें कोई चीज समझी या समझाई जा सकती है, बोली जा सकती है और उसके भीतर गहराई तक उतारी जा सकती है, वह धार्मिक क्षेत्र ही है। यहाँ लोग रामायण की बात, कहानी को, सामाजिक कथा को जानते हैं। श्रीकृष्ण भगवान की कथा को जानते हैं, मोरध्वज की कथा को जानते हैं लेकिन उनकी राजनीति या दूसरी समस्याओं के बारे में पूछा जाए तो शायद ही वह कुछ बात बता पाएँगे। यहाँ का देहाती व्यक्ति भी लोक-परलोक की बात, भगवान की बात, आत्मा की बात, तीर्थयात्रा, पुण्य-परमार्थ की बात, परलोक की बात किसी हद तक बता सकता है और दूसरी बातों को नहीं। इसलिए यह तय किया गया कि लोगों का मन बदला जाए, लोगों की दिशा जिधर है, व लोगों का ध्यान जिधर है लोगों की जानकारियाँ जिस क्षेत्र में हैं, उसको हाथ में लेकर के भावनात्मक नवनिर्माण का प्रयास प्रारंभ किया जाए।

धर्मसत्ता और राजसत्ता दोनों समानांतर हैं। अगर ये राजसत्ता चाहे तो लोगों के मानसिक स्तर को ऊँचा उठा सकती है और लोगों को दिशाएँ दे सकती है, लोगों को क्रोध से रोक सकती है और लोगों को शुद्ध और सदाचारी बना सकती है। इसी प्रकार ये धर्मसत्ता में भी वह सामर्थ्य है कि वह लोगों की भावनाओं को पढ़ सकती है और लोगों को अच्छे मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा दे सकती है। अत: प्रयास यही किया गया कि हम धर्मतंत्र को सँभालें और उसकी शक्ति का उपयोग करें और लोगों की भावनाओं को ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करें। धर्मतंत्र अपने आप में बड़ा सामर्थ्यवान है। धर्मतंत्र में ८० लाख व्यक्ति संत और महात्मा, बाबा और ब्राह्मण, महात्मा के रूप में भारतवर्ष में ७ लाख गाँवों में रहते हैं। भारतवर्ष में ७ लाख गाँव हैं और ८० लाख संत महात्मा हैं। हर गाँव के पीछे ११ आदमी आते हैं। अगर ये ११ आदमी चाहें कि हर गाँव को अपना कार्यक्षेत्र और सेवाक्षेत्र बना लें तो हर गाँव में से शिक्षा

की समस्या को हल किया जा सकता है। सामाजिक गुत्थियों की समस्याओं को दूर किया जा सकता है। विषमताएँ और दूसरी बुराइयाँ जो हमारे देहातों में व और जगहों में फैली हुई हैं उनको मिटाया जा सकता है। यह काम कोई कठिन नहीं है। सफाई की समस्या को सहज समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त संत महात्मा घर-घर भक्ति के नाम पर सहयोग की भावना पैदा करें, कल्याण की भावना पैदा करें, मिल-जुलकर के काम करने की भावना पैदा करें। सरकार का यह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व हो तो हमारा विश्वास बन सकता है और हमारा इतिहास अन्य किसी देश की तुलना में आगे बढ़ सकता है, पीछे रहने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन ये धर्मतंत्र ठीक तरीके से काम नहीं कर सका। प्रयास युग निर्माण योजना का यही था कि धर्मतंत्र में जितने भी व्यक्ति काम करते हैं उन सबको वह प्रेरणा दी जाए, वह शिक्षा दी जाए कि वह भगवान का सूक्ष्म स्वरूप समझें, भगवान का संदेश समझें और भगवान की सेवा पूजा का उद्देश्य समझें।

पिछले दिनों में ही समझाया जाता रहा है कि भगवान पूजा-पाठ का भूखा है। उसकी थोड़ी सी प्रार्थना कर दी जाए, स्तुति कर दी जाए या भोग प्रसाद जैसी छोटी-मोटी रिश्वतें खिला दी जाएँ तो हमारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए वह तैयार रहता है। ये कितनी गंदी और घृणित भावना थी। युग निर्माण योजना ने यह प्रयास किया कि हर व्यक्ति को यह बताया जाए कि भगवान कोई व्यक्ति विशेष नहीं है, बल्कि एक समग्र सत्ता का नाम है। यह सारा विश्व-ब्रह्मांड ही भगवान है और इस विश्व-ब्रह्मांड की पूजा करना और सेवा करना, यही भगवान की वास्तविक सेवा और पूजा है। इसका प्रभाव-परिणाम यह हुआ कि असंख्य व्यक्ति जो पूजा-भजन में ही सारा समय खरच कर देने के लिए तैयार थे, उन्होंने सेवा को अपना धर्म मानना स्वीकार किया और पूजा भजन एक सीमित मात्रा में करने के पश्चात बचे हुए समय में सेवा कार्यों को अपने हाथ में ले लिया। धर्म मंच को सेवा-शिक्षा में मोड़ने का

प्रयास एक बहुत ही अच्छा और बड़ा उपयोगी प्रयास था। उसने इस देश के नागरिकों में भावनात्मक नवनिर्माण करने की दिशा में बहुत सफलता पाई। धर्म-क्षेत्र में जो संपत्ति लगी हुई है, जो पूँजी लगी हुई है, युग निर्माण योजना का यह प्रयास है कि इस पूँजी को केवल पंच-पुजारियों के कार्यों में खरच न होने दिया जाए, बल्कि ऐसे उपयोगी कार्यों में लगाया जाए जिससे कि उसे जनकल्याण के प्रयोजनों में प्रयोग किया जा सके। अकेले केवल मथुरा-वृंदावन में ही अनेक मंदिर ऐसे हैं, जिनमें कि लाखों रुपया मासिक भोग-प्रसाद में खरच कर दिया जाता है। वैसे मथुरा-वृंदावन में ५००० मंदिर हैं। इन मंदिरों की आमदनी से एक बढ़िया विश्वविद्यालय चलाया जा सकता है और उस विश्वविद्यालय के द्वारा ऐसे प्रशिक्षित व्यक्ति तैयार किए जा सकते हैं, स्नातक बनाए जा सकते हैं जो विश्व की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करने के बाद सारे विश्व में भारतमाता का संदेश और

भारतीय संस्कृति का संदेश पहुँचाने में समर्थ हों। ऐसे कार्यकर्त्ताओं को तैयार करना इस विश्वविद्यालय के लिए क्या कठिन होगा।

इंजीनियर बनाने वाले विश्वविद्यालय अपना काम करते हैं, चिकित्सक-डॉक्टर बनाने वाले विश्वविद्यालय अपना काम करते हैं। धर्मप्रचारक और लोकसेवा करने वाले विश्वविद्यालय कहीं भी नहीं हैं। अगर ये मंदिर चाहें तो अपनी आमदनी का रुपया साल भर में खरच कर सकता है और जाने क्या से क्या समाज की सेवा कर सकता है। गायत्री तपोभूमि की आय १५ हजार रुपया मासिक है। जिसका उपयोग ज्ञानयज्ञ में होता है। मथुरा-वृंदावन के अनेक मंदिरों की मासिक आय लाखों रुपया है। ऐसे एक मंदिर की आमदनी से गायत्री तपोभूमि जैसी अनेक संस्थाएँ बनाई जा सकती हैं। यही वह आधार है जो नवनिर्माण का, युग निर्माण का संकल्प पूरा कर सकेंगे। आज की बात समाप्त।

ॐ शांतिः

जनमानस का परिष्कार धर्मतंत्र के मंच से

चौरासी लाख योनियों के बाद मनुष्य जन्म मिलने और उसका सदुपयोग करके जीवनलक्ष्य प्राप्त करने का अवसर अतिशय सौभाग्य माना जाना चाहिए। इस संदर्भ में प्रमाद करने पर फिर चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है। इस शास्त्र प्रतिपादन को ध्यान में रखने पर भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मानव जीवन एक अद्‌भुत उपलब्धि है और उसका उपयोग परमार्थ प्रयोजनों में ही होना चाहिए। पेट प्रजनन जैसे पशुकर्मों में उनका न्यूनतम भाग ही लगाना चाहिए।

उपर्युक्त सभी दृष्टिकोणों से लोकमंगल के लिए बढ़-चढ़कर अनुदान प्रस्तुत करना मनुष्य का परम पवित्र कर्त्तव्य ठहरता है। पूजा-पत्री के कर्मकांडों के टंट-घंट में मन को इस प्रकार बहकाना उचित नहीं कि नाम रट से पाप कट जाएँ और ईश्वर मिल जाएँ। यह सर्वथा निस्सार विडंबना है। जीवनलक्ष्य की पूर्ति और ईश्वरप्राप्ति जैसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों

के लिए मनुष्य को विश्वमानव की सेवा साधना में उच्चतम भावनाओं और प्रबल पराक्रम भरी चेष्टाओं के साथ संलग्न होना पड़ता है। इस राजमार्ग को छोड़कर और किसी पगडंडी से जीवनोद्देश्य की पूर्ति हो नहीं सकती।

वानप्रस्थ जीवन इसी परमार्थ प्रयोजन की पूर्ति के लिए नियत निर्धारित है। उत्तरार्द्ध आयु को लोकमंगल के लिए समर्पित करके उन महान उत्तरदायित्वों को पूरा किया जा सकता है जो सामाजिक ऋण से उऋण होने के लिए, ईश्वरप्रदत्त बहुमूल्य अनुदान का सही उपयोग करने के लिए और चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरांत मिले अलभ्य अवसर का सदुपयोग करने की दृष्टि से नितांत आवश्यक है। यह प्रयोजन लोकमंगल में ही प्रवृत्त होने से संभव हो सकता है। विश्वमानव की सेवा साधना से बढ़कर ईश्वर की भक्ति पूजा और नर-जन्म की सार्थकता का और कोई मार्ग है भी नहीं। सच पूछा जाए तो ज्ञान साधना और योग साधना की

उपयोगिता भी इसी दृष्टि से है कि इन उपायों से परिष्कृत किए गए व्यक्तित्व द्वारा अधिक उच्चस्तरीय सेवा साधना संभव हो सके, अधिक उच्चकोटि का आत्मिक आनंद प्राप्त किया जा सके।

स्पष्ट है कि वानप्रस्थपरक परमार्थ जीवन में प्रवेश करने वालों को जहाँ ज्ञान साधना और योग साधना द्वारा आत्मबल संपादन करना है, वहाँ लोकमंगल के लिए अपनी विभूतियों को समर्पित करते हुए विश्वमानव को अधिकाधिक श्रेष्ठ समुन्नत बनाने में निरत निमग्न भी रहना है। जिन्हें सेवा धर्म पर आस्था न हो मात्र जप, तप और निवृत्तिपरक एकांत सेवन अथवा सुख चैन के बिना झंझट भरे दिन काटने हों, उन्हें इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए। वह स्थिति मरणकाल के निकट आ जाने पर थके-हारे और अशक्त असमर्थ लोगों के लिए ही उपयुक्त हो सकती है। इसे वैराग्य, निवृत्ति, संन्यास आदि अन्य किसी नाम से भले ही पुकारा जाए, पर तेजस्वी वानप्रस्थ के साथ तो नहीं ही जोड़ा जा सकता।

मनुष्य को जहाँ समाजप्रदत्त अगणित सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं वहाँ उसे इस उत्तरदायित्व से भी लाद दिया गया है कि वह सामाजिक उत्कर्ष के लिए बढ़-चढ़कर अनुदान प्रस्तुत करे और लोकसेवा की दृष्टि से इतना कुछ कर दिखावे, जिससे उस पर चढ़ा हुआ भारी ऋण किसी न किसी प्रकार चुकता अथवा हलका हो सके। जो इस उत्तरदायित्व की उपेक्षा करता है, वह समाजद्रोही कहा जा सकता है।

अध्यात्म के दार्शनिक दृष्टिकोण के आधार पर देखा जाए तो मनुष्य को जो कुछ विशेषताएँ अन्य प्राणियों से अधिक दी हैं, वे विशुद्ध रूप से एक अमानत हैं। परमात्मा के सभी प्राणी समान रूप से पुत्र और प्रिय हैं। सबको समान अनुदान देना उसके लिए सामान्य न्याय था, पर मनुष्य को सबसे अधिक विभूतियाँ मिली हैं, उन्हें मौज-मजा करने के लिए दिया गया पक्षपातपूर्ण उपहार नहीं माना जाना चाहिए वरन ऐसी पवित्र अमानत माना जाना चाहिए जिसका

उपयोग विश्ववसुधा को समुन्नत और सुविकसित बनाने में ही किया जाना चाहिए। ईश्वर ने मनुष्य को अपने वरिष्ठ सहकारी के रूप में इसीलिए सृजा है कि विश्व व्यवस्था में उसकी अति महत्त्वपूर्ण भूमिका एवं उपयोगिता संभव हो सके।

वानप्रस्थ को लोकसेवा के जिस क्षेत्र को हाथ में लेना पड़ता है, वह जनमानस का भावनात्मक परिष्कार ही है। स्पष्ट है कि संसार की समस्त समस्याएँ मानवीय चिंतन की विकृतियों ने ही उत्पन्न की हैं। उनका समाधान आज या हजार वर्ष बाद जब भी होगा, लोकप्रवृत्तियों के अधोगामी प्रवाह को उलटकर ऊर्ध्वगामी बनाने से ही संभव होगा। भौतिक संपदाएँ एवं सुविधाएँ चाहे कितनी ही क्यों न बढ़ा ली जाएँ, यदि दृष्टिकोण में विकृतियाँ भरी होंगी तो बढ़ी हुई संपदा विनाश के सरंजाम में ही बढ़ोत्तरी करेगी, सर्वनाश का दिन ही निकट लाएगी। इसलिए धन-वैभव की भौतिक सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि का कार्य दूसरे लोगों पर छोड़कर वानप्रस्थ

को एक ही अछूता काम हाथ में लेना चाहिए कि उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तृत्व के लिए आवश्यक वातावरण एवं उत्साह किस प्रकार उत्पन्न किया जाए? ज्ञानयज्ञ एवं विचारक्रांति इसी प्रक्रिया को कहा जा सकता है। यह नींव यदि ठीक तरह भर ली जाए तो नवयुग निर्माण का भवन खड़ा करने की आधी समस्या सुलझ जाएगी। तब अनायास ही अगणित रचनात्मक एवं संघर्षात्मक क्रिया-कलाप उठ खड़े होंगे और अधर्म के उन्मूलन एवं धर्म के संस्थापन का ईश्वरीय प्रयोजन सहज ही पूरा करेंगे।

लोकशक्ति की प्रचंडता और प्रखरता का हमें अनुभव करना होगा और संघबल उत्पन्न करके उसे सृजनात्मक प्रयोजनों में संलग्न करना होगा। यह कार्य इतना महान और इतना समर्थ है जिसकी तुलना अपराजेय महादैत्य से ही की जा सकती है। जनशक्ति का देवदानव जिस मोर्चे पर भी डट जाएगा उसे जीतकर ही छोड़ेगा। उसके सामने बड़ी से बड़ी शक्ति को भी झख मारनी पड़ती है।

धर्म के प्रति जन आस्था की जो थोड़ी सी संलग्नता है, उसका चमत्कार आँखों के सामने है। कुछ समय पूर्व इस देश में ५६ लाख धर्म व्यवसायी थे। नई जनगणना के अनुसार वह संख्या ८० लाख हो गई। जनगणना में जिन्होंने धर्म को व्यवसाय कोष्ठक में नहीं लिखाया है, जिनकी आधी चौथाई आजीविका इसी क्षेत्र से चलती है,उनकी संख्या भी इससे कम नहीं हो सकती। इसी प्रकार पूरे-अधूरे धर्म व्यवसायी लोगों की संख्या डेढ़ करोड़ तक जा पहुँचती है। जनता किसी दबाव या जबरदस्ती से नहीं वरन स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक इनका व्यय भार वहन करती है, जो सहज ही न्यूनतम पंद्रह करोड़ रुपया प्रतिदिन जा पहुँचता होगा। पंद्रह करोड़ प्रतिदिन अर्थात वर्ष में ५५ अरब। कितनी बड़ी धनराशि है यह। यह तो धर्मक्षेत्र में संलग्न मनुष्यों का न्यूनतम निर्वाह व्यय हुआ। इसके अतिरिक्त लगभग सात लाख मंदिरों का खरच, तीर्थ यात्राओं में होने वाली विपुल धनराशि भी कम से

कम इतनी तो होगी ही। इस प्रकार वह राशि ११० अरब वार्षिक हो जाती है। सोमवती अमावस्या पर गंगा-जमुना इन दो नदियों के स्नान को ही लें, उनके उद्‌गम से लेकर विलय स्थान तक कम से कम एक करोड़ व्यक्ति तो अवश्य ही उस पर्व पर स्नान करने जाते होंगे। एक व्यक्ति के ऊपर मार्ग व्यय, काम का हर्ज, भोजन, दान-पुण्य आदि का खरच बीस रुपया भी जोड़ा जाए तो एक करोड़ व्यक्तियों पर बीस रुपए के हिसाब से २० करोड़ रुपया होता है। ऐसे-ऐसे चार पाँच स्नान वर्ष में पड़ जाते हैं, उनका खरच १ अरब तक जा पहुँचता है। इसके अतिरिक्त कथा-कीर्तन, यज्ञ, समारोह, भोज-भंडारे आदि का हिसाब तैयार किया जाए तो वह राशि भी न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचेगी। इस प्रकार देखने पर उपेक्षित जैसा लगने वाला धर्मक्षेत्र ही इतनी धन-संपत्ति खरच करा लेता है, श्रम और समय लगा लेता है, जितना कि तरह-तरह के दबाव डालने वाली सुसंगठित सरकार भी लगा नहीं पाती।

सरकारी टैक्स लोग कुड़कुड़ाते हुए देते हैं, पर धर्म टैक्सों को स्वेच्छा से देते हैं और पास में न होने पर कर्जा लेकर, उधार करके भी लगाते हैं।

यहाँ धर्म के नाम पर लगने वाले धन और श्रम का समर्थन-खंडन नहीं किया जा रहा है, सिर्फ यह बताया जा रहा है कि लोकरुचि की एक लहर कितने प्रचुर साधन बात की बात में प्रस्तुत कर सकती है। यदि इसी लोकरुचि को अभिनव सृजन की दिशा में मोड़ा जा सके तो जो कार्य असंभव दीखते हैं, साधनों के अभाव में जिन कार्यों का हो सकना कठिन लगता है, वे चुटकी बजाते प्रस्तुत हो सकते हैं और अनहोनी होनी बनकर सामने आ सकती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में जनशक्ति के महादैत्य की क्षमता का थोड़ा सा आभास कराया गया है। उसे जगाया, संगठित किया जाना और सृजन के महान लक्ष्य में नियोजित किया जाना कठिन दीखता अवश्य है, पर वैसा है नहीं। इतने बड़े देश में एक लाख

सुयोग्य और भावनाशील वानप्रस्थी का मिल जाना न तो कठिन है और न असंभव। ८० लाख धर्म व्यवसायी जिस देश में उद्भिज घास-पात की तरह उग पड़ें, वहाँ युग उद्बोधन पर एक लाख वानप्रस्थ न निकलें, यह नहीं हो सकता। बुद्ध को ढाई लाख तपस्वी शिष्य मिले थे और गांधी को भी सत्याग्रह आंदोलन में लगभग इतने ही कर्मवीर मिल गए। देश, धर्म और समाज-संस्कृति के पुनरुत्थान की बात यदि विचारशील वर्ग के गले उतारी जा सके तो एक लाख वानप्रस्थों के लिए की गई युग पुकार उपेक्षित न रहेगी। सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए यदि समुचित उत्साह पैदा किया जा सके तो सृजन सेना का नेतृत्व करने के लिए इतने वानप्रस्थ सहज ही अग्रिम पंक्ति में खड़े दिखाई देंगे।

इन वानप्रस्थों का एक ही काम होगा—जन जागरण, लोकशक्ति का गठन, जनमानस का परिष्कार, भावनाशील लोगों का चयन और उन्हें लोकमंगल के लिए प्रवृत्त होने का प्रोत्साहन-

मार्गदर्शन। यह एक काम ही इतना बड़ा है जिससे संबंधित विविध क्रिया-कलापों में वानप्रस्थ वर्ग को निरंतर लगा रहना पड़ेगा। यह कार्य जिस सीमा तक पूरा होने लगेगा, उसी अनुपात में अगणित रचनात्मक और संघर्षात्मक क्रिया-कलाप पनपते दिखाई देंगे और समाज की विभिन्न समस्याओं को स्थानीय उपाय उपचारों के आधार पर हल करने में निरत होंगे।

यह समस्त क्रिया-कलाप धर्मधारणा पर ही आधारित होना चाहिए। भावना स्तर का स्पर्श कर सकना धर्म और अध्यात्म दर्शन के लिए ही संभव है। राजनीति, समाज संगठन, अर्थनीति आदि आधार भी पुनरुत्थान के हो सकते हैं, पर भारत जैसे अस्सी प्रतिशत अशिक्षितों और घोर देहातों में रहने वाले लोगों के लिए वे आधार उतने हृदयग्राही न हो सकेंगे, जितना धर्म का आधार। भारत की वर्तमान परिस्थितियों में नवनिर्माण के समग्र अभियान की सफलता धर्म आस्था का अवलंबन लेकर ही प्राप्त

की जा सकती है, यों मानव तत्त्व में उत्कृष्टता की स्थापना का प्रयोजन अंततः परिष्कृत धर्मधारणा के आधार पर ही संभव हो सकता है।

धर्मतंत्र को सही, समर्थ एवं सक्रिय बनाने और लोकचेतना में उत्कृष्ट आदर्शवादिता, धर्म-धारणा का स्तर बनाए रखने की जिम्मेदारी उठाने की आवश्यकता अनुभव हुई। यही वह संकल्प और चिंतन है, जिससे युग निर्माण का, प्रज्ञा अभियान का प्रादुर्भाव हुआ। उसकी रूपरेखा बनी और विधि व्यवस्था कार्यान्वित हुई।

धर्मतंत्र के माध्यम से परिशोधन-परिष्कार का प्रयत्न इसलिए भी आवश्यक हो गया है कि देश की परंपरा, प्रवृत्ति एवं परिस्थिति में, लोकमानस की पूर्ण भूमिका में धार्मिकता का ही कुछ न कुछ तारतम्य चला आता है। राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, तत्त्वदर्शन आदि की ऊँची पृष्ठभूमि सुशिक्षितों की होती है। उस आधार पर प्रगतिशीलता का समझना-समझाना उन लोगों के लिए संभव नहीं जिनका

उपर्युक्त संदर्भों के साथ सीधा वास्ता नहीं रहा है। अपने देश की बहुसंख्यक जनता को यदि युगधर्म समझाना हो और परिशोधन-परिष्कार की प्रगतिशीलता को गतिशील बनाया जाना हो तो फिर धर्मतंत्र की पुरातन पृष्ठभूमि के सहारे इस प्रकार का लोकशिक्षण सरल भी रहता है और सफलता का मार्ग भी सीधा पड़ता है।

अपने देश की समस्याएँ सामाजिक क्षेत्र की हैं। पिछड़ापन इसी क्षेत्र में घुसी हुई प्रतिगामिता की देन है। आर्थिक तथा दूसरी अनेकानेक समस्याएँ इसी की देन हैं। सर्वविदित है कि कुरीतियों में अपनी कितनी बरबादी होती है। औसत गृहस्थ की प्रायः एक तिहाई आमदनी विवाह, शादी, मृतक भोज आदि से संबंधित अपव्ययों में गँवानी पड़ती है। शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, निर्वाह आदि सभी आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ती है।

यही बात जाति-पाँति एवं ऊँच-नीच की मान्यताओं से उपेक्षित स्थिति में पड़े हुए लोगों की है।

मूढ़ मान्यताओं, कुरीतियों की भरमार भी कम नहीं है। ८० लाख समर्थ व्यक्ति धर्म का आवरण ओढ़कर भिक्षा-व्यवसाय को आजीविका का साधन बनाए हुए हैं। अपनी महत्ता-उपयोगिता बताने के लिए यह समुदाय कुछ ऐसे आडंबर खड़े करते रहते हैं, जिसमें जमता का धन, समय, श्रम का अपव्यय होता रहे।

इन कठिनाइयों का निराकरण कैसे हो? जो अंधपरंपराएँ पीड़ा-पतन की कुंडली मारकर बैठी हैं वे मिटें कैसे? इस प्रश्न का उत्तर एक ही है कि धर्मतंत्र के सहारे कुप्रचलनों का उन्मूलन किया जाए। साथ ही उस क्षेत्र की प्रमुख विशेषता भाव संवेदना, श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा को पिछड़ेपन से मोड़कर प्रगतिशीलता के साथ संबद्ध किया जाए। इस प्रयास से न केवल सामाजिक कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं, अंधविश्वासों का निराकरण हो सकेगा वरन प्रस्तुत प्रतिगामिता में होने वाली बरबादियों में संलग्न शक्ति को सृजन प्रयोजनों में लगा सकना भी संभव हो

जाएगा। इससे बचत और नियोजन का दोहरा उद्देश्य पूरा होता है।

नशेबाजी एवं गंदगी दुष्प्रवृत्तियों से अधिक व्यापक है। आलस्य और प्रमाद एक प्रकार से सर्व-साधारण के स्वभाव में सम्मिलित हो रहा है। बाल विवाह, अनमेल विवाह जैसी कुरीतियों की भरमार है। अपराधी प्रवृत्तियाँ भी बढ़ती ही जा रही हैं। सहकारिता-सज्जनता के तत्त्वों को अभी बहुत अधिक उभारने की आवश्यकता है।

इस क्षेत्र में सुधार परिवर्तनों की जिम्मेदारी धर्मतंत्र को उठानी चाहिए। राजतंत्र व्यवस्था ही सँभाल सकता है, लोकमानस का आदर्शवादी परिवर्तन कर सकने जितनी गहरी पहुँच उसकी है नहीं। राजतंत्र के कंधों पर धर्मतंत्र का बोझ न लादा जाए और उसे उठाने के लिए उन्हीं को आगे लाया जाए जो इस संदर्भ में रुचि रखते हैं तथा कुछ करने में समर्थ हैं।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को उसके सनातन स्वरूप में जन-जन के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए

और उसकी दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन की क्षमता का समुचित सदुपयोग किया जाए। धर्म के प्रति जो श्रद्धा जमी चली आ रही है, उसे उन सृजन प्रयोजनों के लिए नियोजित किया जाए। उपयोगिता को श्रद्धा उत्पन्न करती है। धर्म की उपयोगिता और क्षमता सिद्ध करने के लिए प्रज्ञा अभियान के अंतर्गत उसी भाव शक्ति को लोक-शिक्षण में, लोकनिर्माण में नियोजित किया जा रहा है। ❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)